अक्तूबर १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

आत्म-कथन

बहुत उपकार है ब्रह्मदेश का

भारत और म्यंमा (बरमा, ब्रह्मदेश) का पारस्परिक स्नेह-संबंध बहुत पुराना है। भगवान बुद्ध के तीन-चार सौ वर्ष पूर्व शक्तिशाली पंचाल नरेश ने शाक्य और कोलीय गणराज्यों को ध्वस्त कर दिया। तब शाक्य गणराज्य का गणपति अभिराजा अपने कुछ साथियों सहित पूर्व की ओर कूच करते हुए कामरूप (आसाम) को पार कर, म्यंमा की सीमावर्ती दुर्गम पहाड़ियों को लांघ कर चिंदविन और इरावती नदी के मध्यवर्ती मैदानी भूभाग में जा पहुँचा।

यह एक शरणार्थी दल था जिसे पड़ोसी देश ने प्यारपूर्वक शरण ही नहीं दी, बल्कि उसके दीर्घकालीन शासकीय अनुभवों को देख कर उसके प्रमुख शाक्यराज अभिराजा को अपना शासक भी चुन लिया। पुरातन शाक्यवंश के ये लोग और उनके वंशज म्यंमा के लोगों से समरस होकर वहीं के समाज में समा गए।

परंतु पुरातन काल में व्यापार व्यवसाय के लिए समुद्री मार्ग से दक्षिणी म्यंमा में जाने वाले और वहीं बस जाने वाले भारतीयों की संख्या इनकी अपेक्षा बहुत अधिक थी। उन दिनों भारत का समुद्री अंतर्राष्ट्रीय व्यापार बहुत उन्नत अवस्था पर था। यह व्यापार पूर्व की ओर समुद्री मार्ग से केवल म्यंमा तक ही सीमित नहीं था, प्रत्युत सारे दक्षिण-पूर्वी एशिया और इससे आगे चीन तक भी फैला हुआ था। यद्यपि अधिकांश भारतीय व्यापारी अपना व्यापार म्यंमा तक ही सीमित रखते थे तथापि जो लोग बहुत आगे तक व्यापार करने जाते थे, उनके लिए भी दक्षिणी म्यंमा एक महत्त्वपूर्व पड़ाव था।

पुरातन पालि साहित्य के अनुसंधान से यह तथ्य प्रकट होता है कि भारत के भिन्न-भिन्न जनपदों के लोग इस अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में संलग्न थे। पश्चिमी भारत के कंबोज, गंधार, सोवीर, सिंध और सौराके व्यापारी भारत के पश्चिमी तटवर्ती बंदरगाहों से यात्रा करते थे। इनमें से भरुकच्छ (आज का भड़ोच) और सुप्पारक पत्तन (आज के मुंबई के समीप नल्ला-सोपारा) प्रमुख थे। यहां से जाने वाली विशाल व्यापारिक नौकाएं रास्ते में श्रीलंका के ताम्रपर्णी बंदरगाह पर रुकती थीं। वहां कुछ खरीद-फरोख्त हो जाने के बाद ये व्यापारिक नौकाएं वहां से सीधे दक्षिणी म्यंमा की ओर प्रयाण करती थीं। दक्षिण भारत के व्यापारी कांचीपुरम और कावेरीपट्टन के बंदरगाहों से दक्षिणी म्यंमा की समुद्री यात्रा करते थे।

इनके अतिरिक्त उन दिनों कोशल, काशी, मगध और अंग के अनेक नगर भी अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे। यहां के व्यापारी अपना माल असबाब बैलगाड़ियों पर अथवा नदी में चलने वाली नौकाओं पर लाद कर पूर्वी भारत में गंगा के मुहाने पर स्थित ताम्लिप्ति (कलकत्ता से दक्षिण की ओर) बंदरगाह तक ले जाते थे और वहां से बड़ी-बड़ी समुद्री नौकाओं द्वारा म्यंमा देश तथा उसके आगे तक की यात्रा करते थे। भगवान बुद्ध के सैंकड़ों वर्ष पूर्व से यह व्यापार होता रहा है। उन व्यापारियों में अनेक म्यंमा के इरावती, चित्रांग (सिट्टांग) और शालवन (साल्विन) महानदियों के मुहानों पर स्थित कई बंदरगाहों पर बस भी गये थे। इन प्रवासी भारतीयों ने इन उपनिवेशों को भारतीय नाम दिये जिनमें से अधिकांश अब तक प्रचलित हैं।

तपस्सु भल्लिक

भारत के उक्कल (उत्कल उड़ीसा) जनपद से ब्रह्मदेश की इरावती नदी के मुहाने पर आये लोगों ने वहां जिस नगर को बसाया उसे अपने देश की याद में 'उक्कल' नाम दिया। उक्कल नगर में केवल उत्कल प्रदेश से गए हुए भारतीय ही नहीं बल्कि अनेक जनपदों के भारतीय व्यापारी बस गये थे। जैसे तपस्सु और भल्लिक दोनों भाई व्यापार हेतु वहां जा बसे थे, पर वे बाल्हिक के थे जिसे आज बलख कहते हैं और जो अफगानिस्तान में मजारेशरीफ से अठारह कि.मी. पश्चिम में है। कोई उन्हें पोक्खरावती का भी बताते हैं जिसे कि आज के पेशावर नगर से सत्रह मील दूर स्वात नदी के तट पर स्थित छरसद्दा से मिलाया जाता है। भगवान बुद्ध को जब सम्यक संबोधि प्राप्त हुई तब उक्कलापति वहां का राजा था। तपस्सु और भल्लिक दोनों भाई वहां व्यवसाय करते थे। ये दोनों मूलतः जहां कहीं के भी हों, पर अवश्य ही बर्मा के उक्कलानगर में बस गये थे और व्यापार के लिए वहां से भारत बार-बार आते-जाते रहते थे। ताम्लिप्ति तक समुद्री नावों में लाए गये बरमी सामान को जब वे पांच सौ बैलगाड़ियों पर लाद कर उरुवेल वन में से गुजर रहे थे तब उन्होंने सम्यक संबुद्ध के दर्शन किये थे। भगवान उस समय सम्यक संबोधि के मुक्ति-सुख में सात सप्ताह बिता चुके थे और बोधिवृक्ष के समीप राजायतन वृक्ष के तले आसीन थे। इन दोनों भाइयों ने उन्हें ब्रह्मदेश के चावल और मधु के बने मोदक प्रदान किये जो कि सम्यक संबोधि प्राप्त करने के बाद भगवान का प्रथम भोजन था। भगवान से इन्हें उनके सिर के आठ गुच्छे बाल प्राप्त हुए। उन्हें लेकर वे तत्काल उक्कला लौटे और वहां के राजा उक्कलापति ने बोटठीं, सूले और मुख्यतः श्वेडगोन स्तूपों का निर्माण करवा कर उनके गर्भ में इन्हें ससम्मान संस्थापित किया, जिन्हें वहां के लोग आज तक पूजते हैं।

तपस्सु और भल्लिक ने उस समय भगवान से कोई धर्मदेशना नहीं सुनी। भगवान ने अपनी प्रथम धर्मदेशना वाराणसी मृगदाय में दी थी। भगवान के केशधातु उक्कला में स्थापित करवा कर वे दोनों पुनः मगध देश आये और राजगिरि में उन्होंने भगवान से धर्मशिक्षा प्राप्त की। फलस्वरूप भल्लिक प्रव्रजित हो अनास्रव अरहंत हो गये और अपना उद्धार कर अनेक लोगों की धर्मसेवा में लग गये। तपस्सु स्रोतापन्न हुआ और गृहस्थ रह कर व्यापार-धंधे में लगा रहा। इन दोनों के माध्यम से ही बुद्ध की शिक्षा पहले-पहल ब्रह्मदेश में पहुँची।

महास्थविर गवम्पति

प्रवासी भारतीयों ने दक्षिणी म्यंमा के चित्रांग (सिट्टांग) और

शालवन (साल्विन) नदियों के मुहानों पर जो उपनिवेश बसाया उसे सुवण्णभूमि नाम दिया। यह उन दिनों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का अत्यंत महत्त्वपुर्ण भूभाग था जो कि पूर्व में आज के थाईलैंड के बहुत बड़े भाग तक फैला हुआ था और दक्षिण में धनसिरिं (तनासरिं) ही नहीं बल्कि उससे भी आगे आज के पूरे मलेसिया तक फैला हुआ था। भगवान बुद्ध के जीवनकाल में सुवण्णभूमि का शासक सिंहराजा था। उसने समुद्रतट पर सुधम्मवती नाम की राजनगरी बसायी थी जो कि आज कल थटोन कहलाती है। यह अनुमान करना गलत नहीं होगा कि इसी ने सुवण्णभूमि के सुदूर दक्षिणी छोर पर सिंहपुर बसाया हो। उन्हीं दिनों भारत के मध्यदेश के मिथिलावासी गवम्पति को भगवान बुद्ध से शिक्षा प्राप्त हुई थी। वे अरहंत हुए और अपने भाई सिंहराजा को तथा वहां के अन्य लोगों को धर्म सिखाने के लिए सुवण्णभूमि गये। इस प्रकार दक्षिणी ब्रह्मदेश में दूसरी बार भगवान बुद्ध की शिक्षा पहुँची। पालि ग्रंथों के अनुसार भगवान के परिनिर्वाण के आठवें वर्ष में महास्थविर गवम्पति ने सुवण्णभूमि में बुद्ध शासन की स्थापना की।

सोण और उत्तर

सम्राट अशोक के संरक्षण में तृतीय धर्मसंगीति पूर्ण करके महास्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स ने जब भगवान बुद्ध की कल्याणी विद्या के प्रचार-प्रसारार्थ भिन्न-भिन्न देशों में धर्मदूत भेजे, तो अरहंत सोण और उत्तर सुवण्णभूमि भेजे गये। उस समय सुवण्णभूमि की राजधानी सुधम्मपुर में सिरीमासोक नाम का राजा राज्य करता था। इन धर्मदूतों ने सर्वप्रथम वहां ब्रह्मजालसुत्त का उपदेश दिया जिससे प्रभावित होकर अनेक लोग सद्धर्म में प्रतिष्ठित हुए और बहुतों ने प्रव्रज्या भी ग्रहण की।

सुवण्णभूमि में सर्वप्रथम इसी सूत्र का उपदेश दिया जाना यह प्रमाणित करता है कि बुद्धपूर्व कालके जो भारतीय सुवण्णभूमि आये थे, वे भिन्न-भिन्न दार्शनिक मान्यताओं से बँधे हुए थे और स्थानीय लोगों पर भी इन मान्यताओं का गहरा प्रभाव था। स्थविर अरहंत भल्लिक तथा अरहंत गवम्पति के कारण बुद्ध का अनुभूतिपरक सम्यक दर्शन लोगों की समझ में आने लगा होगा। परंतु अभी भी बुद्धपूर्व की दार्शनिक मान्यताएं अनेक लोगों के मानस में समायी हुई होगी। सोण और उत्तर ने उन्हें दूर करना आरंभ किया। अतः कह सकते हैं कि इसके बाद ही सुवण्णभूमि में बुद्ध शासन अपने शुद्ध रूप में स्थापित होने लगा।

सारे ब्रह्मदेश में बुद्ध शासन के सर्वथा लुप्त हो जाने की नौबत कभी नहीं आयी। यदाकदाकहीं जरा दुर्बलता आयी तो उसे श्रीलंका से बल प्राप्त होता रहा। बुद्ध शासन की नींव सदा सुदृढ़ रही तो ही वहां पांचवा और छठा संगायन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ।

भगवान के शिष्य अरहंत भल्लिक ने अथवा अरहंत गवंपति ने म्यंमावासियों को जो सद्धर्म सिखाया होगा वह केवल शील, सदाचार के उपदेश तक ही सीमित नहीं रहा होगा। भगवान बुद्ध भी शील का केवल उपदेश ही नहीं देते थे प्रत्युत उसे जीवन में उतारने के लिए समाधि द्वारा चित्त का निग्रह और प्रज्ञा द्वारा चित्त का पूर्ण प्रक्षालन करना भी सिखाते थे। इन तीनों से ही आर्य अष्टांगिक मार्ग पूरा होता है। अतः निश्चितरूप से उनके अरहंत शिष्यों ने भी केवल शील का उपदेश ही न देकर उसे क्रियान्वित करना भी सिखाया होगा। एकाग्रता के लिए समाधि की साधना सिखायी होगी, चित्तविशुद्धि के लिए विपश्यना सिखायी होगी। तभी कोई व्यक्ति सही माने में शील धर्म में प्रतिष्ठित होता है, क्योंकि तभी शील भंग करने के लिए अंतर्मन में विकार उत्पन्न करते रहने वाला दूषित स्वभाव पलटता है। अतः यह सोचा भी नहीं जा सकता कि किसी अरहंत ने नए देश में जाकर धर्म संस्थापित किया और वहां के लोगों को विपश्यना विद्या न सिखायी हो, जो कि भगवान बुद्ध की प्राणदायिनी व्यावहारिक शिक्षा है। हां, यह अलग बात है कि अरहंत भल्लिक अथवा अरहंत गवंपति ने विपश्यना के रूप में लोगों को जो शुद्ध धर्म सिखाया वह बुद्ध के २७५ वर्ष बाद कुछ विकृत हो गया। उसने अपनी शुद्धता खो दी। भले इने-गिने लोगों ने उसकी शुद्धता कायम भी रखी हो।

इसीलिए जब अरहंत सोण और उत्तर अपने पांच अन्य शिष्यों के साथ ब्रह्मदेश आए तो वहां सबसे पहले उन्होंने ब्रह्मजालसुत्त का उपदेश दिया। ब्रह्मजालसुत्त तत्कालीन भारत की ६२ प्रकार की शास्वतवादी अथवा उच्छेदवादी दार्शनिक मान्यताओं की गणना या उनका खंडन मात्र ही नहीं है, जैसे कि अधिकांश लोग इसे समझते हैं प्रत्युत यह विपश्यना साधना का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। दूषित और अधूरी साधनाओं को समझाते हुए उनके आधार पर निर्मित हुई विभिन्न सांप्रदायिक दार्शनिक मान्यताओं की कमियों को इसमें दिखाया गया है और उसके साथ-साथ शुद्ध विपश्यना द्वारा नितांत भवविमुक्ति की शिक्षा इसमें निहित है। अरहंत सोण और उत्तर ने विपश्यना द्वारा भवमुक्त अरहंत अवस्था उपलब्ध कर सकने के मार्ग को प्रशस्त किया और यह विधि अपने शुद्ध रूप में दक्षिण बर्मा के मोन प्रदेश में सदियों तक जीवित रही। इस शुद्ध प्रतिपत्ति के साथ-साथ तिपिटक की परियत्ति भी यहां शुद्ध रूप में जीवित रखी गयी।

विपश्यना के ही कारण यहां पीढ़ी-दर-पीढ़ी शैक्ष्य और अशैक्ष्य, सम्मुति और परमत्थ संघ विद्यमान रहा। सम्मुति संघ माने वे सामान्य भिक्षु जो आर्य अवस्था तक अभी नहीं पहुँच पाए, परंतु इसके लिए प्रयत्नशील हैं। शैक्ष्य भिक्षु वे जो आर्य अवस्था (स्रोतापत्ति अथवा सकृदागामी अथवा अनागामी) तक पहुँच गये, परंतु अभी अरहंत नहीं बन पाए। अशैक्ष्य भिक्षु वे जो अरहंत अवस्था तक पहुँच गये। ये सारी अवस्थाएं विपश्यना द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं। अतः स्पष्ट है कि विपश्यना विद्या दक्षिण म्यंमा में अनेक सदियों तक शुद्ध रूप में जीवित रखी गयी और इसी प्रकार संपूर्ण तिपिटक साहित्य भी आरंभ में स्मृतिवद्ध और आगे जा कर लिपिवद्ध रूप में शुद्धतः कायम रखा गया।

परंतु म्यंमा में उत्तर की ओर ये दोनों ही लुप्त हो चुके थे। न वहां तिपिटक थे और न ही विपश्यना। इसी कारण वहां धर्म पूर्णतया दूषित हो गया था। उस समय वहां अरि नाम के जो धर्मगुरु थे वे पूर्णतया चरित्रभ्रष्ट थे। अपने आप को भिक्षु कहते हुए वे संघ के नाम पर कलंक स्वरूप थे। यह ११वीं सदी के

मध्यवर्ती काल की अवस्था थी जबकि वहां की पुग्राम (पगान) नामक राजधानी में राजा अनुरुद्ध राज्य करता था। दक्षिण म्यंमा के एक अरहंत भिक्षु धम्मदस्सी ने वहां की यह अवस्था जानी तो वह करुणा-विह्वल होकर पगान नगर पहुँचा और राजा अनुरुद्ध से मिला। राजा उसके उपदेशों से अत्यंत प्रभावित हुआ। अनाचारी अरियों के दूषित धर्म की तुलना में उसे शुद्ध सद्धर्म बहुत प्रिय लगा, ग्राह्य लगा और सद्यःकल्याणदायी लगा। अतः उसने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

अपने राज्य में शुद्ध सद्धर्म स्थापित करने के लिए राजा अनुरुद्ध ने दक्षिण की राजधानी थटोन (सुद्धमावती) के राजा मनुआ से तिपिटक की मांग की। परंतु उसने यह मांग ठुकरा दी। इससे नाखुश होकर बलशाली अनुरुद्ध ने दक्षिण बर्मा पर आक्रमण करके थटोन को जीत लिया और वहां पर उपलब्ध तिपिटक ग्रंथों के तीस सेट तीस हाथियों पर श्रद्धापूर्वक रख कर और अनेक सम्मुति, शैक्ष्य और अशैक्ष्य भिक्षुओं को सम्मानपूर्वक अपनी राजधानी पगान में ले आया। पराजित राजा मनुआ को भी बंदी बना कर ले आया परंतु पगान में उसे अपने परिवार सहित सुखपूर्वक रहने के लिए एक महल की व्यवस्था कर दी। इस प्रकार शुद्ध परियत्ति और पटिपत्ति मध्य बर्मा के पगान राज्य में पहुंची और आगत तपस्वी भिक्षुओं की निःस्वार्थ सेवा द्वारा कुछ वर्षों में ही वहां प्रतिष्ठित हो गयी। तब से वहां धर्म के इन दोनों पक्षों को शुद्ध रूप में जीवित रखने का प्रयत्न चलता रहा। अरहंत भिक्षु धम्मदस्सी जो इस सारे आंदोलन के जन्मदाता थे वे इस सफलता से संतुष्ट हो कर उत्तर की ओर चल दिये तथा मध्य बर्मा में इरावती नदी के पश्चिमी तट पर सुरम्य सगाइर् पर्वत की शांत गुफाओं में विहार करने लगे। वहां भी सद्धर्म का पुनरोद्धार हुआ। अनेक मुमुक्षु भिक्षु समय-समय पर उनके पास आकर विपश्यना विद्या सीखते रहे। उनके परिनिर्वाण के बाद भी सगाइर् पर्वत विपश्यना विद्या का कल्याणकारी केंद्र बना रहा। पीढ़ी-दर-पीढ़ी गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा वहां विपश्यना विद्या का प्रशिक्षण अबाध रूप से चलता रहा। यह सच है कि अधिकांश भिक्षु परियत्ति याने तिपिटक के अध्ययन-अध्यापन में रुचि रखते थे। अतः हर पीढ़ी में पटिपत्ति याने विपश्यना में रुचि रखने वाले भिक्षु इने-गिने ही होते थे, पर फिर भी इन थोड़े से विपश्यी भिक्षुओं ने अक्षुण्ण गुरु-शिष्य परंपरा द्वारा इस विद्या को शुद्ध रूप में जीवित रखा। इतिहास को न इन गुरुओं के नाम याद है और न इनके शिष्यों के ।परंतु यह विद्या अपने शुद्ध रूप में कायम रही इसका प्रमाण यही है कि लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व लेडी सयाडो नामक एक अत्यंत मेधावी और पुरुषार्थी तरुण भिक्षु ने परियत्ति के अध्ययन में पूर्णता प्राप्त करके सगाइर् पहाड़ी की गुफा में सिखायी जाने वाली विपश्यना विद्या सीखी और समय पाकर उसमें पारंगत होने के बाद अन्य लोगों को यह विद्या बांटते रहे। उनका अपना विहार मोंय्वा नगर के समीप लेडी गांव में था। वे अधिकतर वहीं साधना करते थे और अन्य भिक्षुओं को सिखाते थे। परंतु समय-समय पर सारे म्यंमा देश में धर्मचारिका भी करते रहते थे। परियत्ति में अत्यंत कुशल होने के कारण उन्होंने सद्धर्म पर पालि तथा बर्मी भाषा में अनेक ग्रंथ लिखे। इस प्रकार परियत्ति को बल प्रदान किया और साथ-साथ चंद लोगों को विपश्यना विद्या सिखाते हुए पटिपत्ति की शुद्ध परंपरा भी जीवित रखी।

लेडी सयाडो एक महान संत थे। अत्यंत दूरदर्शी थे। उन्हें इस बात का पूर्ण विश्वास था कि भगवान बुद्ध के २५०० वर्ष बाद शुद्ध धर्म की विपश्यना विद्या पुनः लोगों में जागेगी, भारत पहुँचेगी और पूरे विश्व में फैलेगी। उन्होंने देखा कि यह काम केवल भिक्षुओं द्वारा ही पूरा नहीं होगा। इसके लिए सद्गृहस्थ आचार्य भी तैयार होने आवश्यक हैं। अतः सदियों तक भिक्षु साधकों तक सीमित रहने वाली यह विद्या उन्होंने गृहस्थों के लिए भी सुलभ बनायी। उन्होंने जहां कुछ भिक्षु आचार्य प्रशिक्षित किये वहीं सयातैजी नामक एक गृहस्थ किसान को इस विद्या में पुष्ट करके आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। उनके बाद अनागामी गृहस्थ आचार्य सयातैजी ने यह विद्या अनेकों को बांटी और कुछ गृहस्थ तथा भिक्षु आचार्य प्रशिक्षित किये, जिनमें गृहस्थ आचार्य सयाजी ऊ बा खिन विदेशियों को धर्म सिखाने में बहुत सफल हुए। उनकी कृपा से यह विपश्यना विद्या मुझे भी प्राप्त हुई। चौदह वर्षों तक उनके चरणों में बैठ कर जो कुछ सीखा, उसे भारत तक पहुँचाने का उनका धर्म आदेश मान कर १९६९ में विपश्यना की यह अनमोल विद्या लेकर मैं अपने पुरुखों की भूमि भारत आया। भारत के प्रबुद्ध लोगों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया और यह विद्या यहां लगभग दो सहस्राब्दियों बाद पुनः प्रतिष्ठित होने लगी। विश्व के अन्य अनेक देशों में भी इसका विकास होना आरंभ हुआ, जिसके कारण दुखियारी मानवता को भगवान बुद्ध की यह मुक्तिदायिनी शिक्षा का लाभ मिलने लगा।

इसीलिए बार-बार कहता हूं कि मैं ही नहीं, बल्कि सभी विपश्यी साधक साधिकाएं जो इस कल्याणी विद्या से लाभान्वित हुए हैं वे म्यंमा देश के प्रति चिर आभारी हैं और सदा रहेंगे। परियत्ति और पटिपत्ति दोनों को सदियों तक शुद्ध रूप में कायम रखने वाले वहां के उस भिक्षु संघ के प्रति, उस आचार्य परंपरा के प्रति भी वे अत्यंत आभारी हैं और रहेंगे। म्यंमा का उपकार कोई विपश्यी भला कैसे भूलेगा! कृतज्ञ होना धर्म में पुष्ट होने का एक प्रबल प्रमाण है। कृतज्ञता विपुल कल्याणकारिणी है। अतः हम सब अत्यंत कृतज्ञ हैं।

कल्याणमित्र,

सत्यनारायण गोयन्का.

पगोडा-शिलान्यास समारोह में साधकों को खुला आमंत्रण

प्रिय बंधु भगिनी,

आपको यह विदित हो कि मुंबई में 'एस्सल वर्ल्ड' (गोराईगांव) से सटे हुए समुद्र तट के निकट एक विशाल और भव्य **विपश्यना पगोडा** का निर्माण हो रहा है। इस पगोडा में लगभग १०,००० साधक साधिकाएं एक साथ ध्यान कर सकेंगे तथ बुद्ध-धातु की पावन धर्म-तरंगों से लाभान्वित हो सकेंगे।

इस भूमि का पावनीकरण समारोह कुछ समय पूर्व हुआ था। इसके शिलान्यास का मंगल कार्यक्रम निम्न प्रकार आयोजित किया गया है, जिसमें भाग लेने के लिए सभी साधक साधिकाओं को सप्रेम आमंत्रण है।

बाहर से आने वाले अभ्यर्थियों को किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव हो तो वे मुंबई पहुँचने पर २४ व २५ अक्टूबर को निम्न दूरभाष क्र. पर संपर्क करें – फोनः (०२२) ८२०५५८६ अथवा मोबाइल फोनः ९८२००-३०५९०.

कार्यक्रम; दिनांक २६ अक्टूबर १९९७, रविवार

प्रातः – ९:३० से ११:३० पूज्य गुरुजी के सान्निध्य में सामूहिक साधना और मंगल प्रवचन। [इस कार्यक्रम में केवल विपश्यी साधक साधिकाओं को ही उपस्थित रहने की अनुमति है। केवल साधक साधिकाओं के लिए दोपहर १२:०० बजे भोजन की व्यवस्था है।]

अपराह्न – ३:०० से ५:०० सार्वजनिक कार्यक्रम। [इस कार्यक्रममें विपश्यी साधक साधिकाओं के साथ-साथ अन्य सभी लोग भाग ले सकेंगे।]

आवश्यक सूचनाएं – १. जो लोग कार चला कर आना चाहें वे भायंदर होते हुए 'एस्सल वर्ल्ड' पहुँचें। २. मोटरबोट से 'एस्सल वर्ल्ड' पहुँचने के लिए **बोरीवली** स्टेशन(प.) से **बस नं. २९४** तथा **मलाड** स्टेशन(प.) से **बस नं. २७२** द्वारा जेट्टी पर पहुँचें। मोटरबोट प्रातः ७ बजे से आरंभ होती है, जिसका किराया रु.११.५० प्रति व्यक्ति होगा। ३. दोनों तटों पर धर्मसेवक उपस्थित रहेंगे। ४.पंडाल में बैठने के लिए दरी बिछी होगी। जिसे आवश्यकता हो वे अपना आसन साथ लेकर आएं। ५. अपने इस कार्यक्रमके लिए कोई टिकट नहीं है, किंतु कार्यक्रमके बाद जो 'एस्सल वर्ल्ड' की सैर करना चाहें, उन्हें नियमानुसार उसकी टिकट खरीदनी होगी।

धम्मगिरि पर कार्यक्रमः दि. २७-१० को सायं ५ से ८ तक – **सघन तश्तरी** पर, और दि. २८-१० को प्रातः ९ से १२ तक – "भगवान बुद्ध की विपश्यना विद्या अपनी जन्मभूमि भारत में जनकल्याण के लिए कैसे और अधिक विकसित की जा सके" – विषय पर **चर्चा-संगोष्ठी** और उसी शाम पूज्य गुरुजी के सान्निध्य में दस दिवसीय शिविर आरंभ होगा। **मंगल हो!**